A Pratibha Spandan's Journal

CONFLUENCE OF KNOWLEDGE
(A Multidisciplinary International Peer-Reviewed/Refereed Journal)
ISSN 2320–5237 | Volume 13, Issue 03, April 2026 (Special Issue)
http://cok.pratibha-spandan.org | © The Author(s) 2026

भारतीय संगीत में राग एवं रस सिद्धान्त का महत्व

DR. DEVRAJ SHARMA
ASSOCIATE PROFESSOR MUSIC VOCAL, DR.Y.S. PARMAR PG COLLEGE NAHAN DIST.-SIRMOUR, H.P.

सार संक्षेप

भारतीय संगीत में राग एवं रस सिद्धान्त का विशेष महत्व है। राग समय सिद्धान्त के अनुसार प्रत्येक राग दिन के विभिन्न समय और ऋतुओं में ही गाए बजाए जाते है। रागों का प्रभाव श्रोताओं के मन पर अनुकूल पड़ता है। वहीं रस सिद्धान्त (करुण, हास्य, वीर आदि) आठ रसों द्वारा भावनात्मक संवेगों उत्पन्न कर श्रोताओं के मन को आनन्दित और भाव-विभोर करते हैं। संगीत रस निष्पत्ति का सर्वोत्तम साधन है। जब किसी राग के उत्पन्न अनुभवों में ताल का योग मिल जाता है, तब उसका प्रभाव और अधिक गहन हो जाता है। रस भाव में जहाँ श्रोता की अवस्थाएँ आती रहती हैं वहीं संवेदन का विशेष अनुभव होता है। दूसरे शब्दों में भारतीय संगीत में समय सिद्धान्त पर विशेष जोर दिया जाता है। यहाँ तक कि दिन और रात के विभिन्न पहरों के अनुसार रागों की रचना की गई है जैसे— प्रातः काल, संध्या, रात्रि आदि। उदाहरणतः राग भैरव, अहीर भैरव, तोड़ी आदि प्रातःकाल में गाये जाते हैं। इसी प्रकार राग यमन, कल्याण, पूरिया आदि रात्रि के समय तथा राग बागेश्री, मालकौंस, दरबारी आदि भी रात्रि के समय गाये जाते हैं। साहित्य में नौ रस माने गये हैं— श्रृंगार, हास्य, करुण, रौद्र, वीर, भयानक, वीभत्स, अद्भुत और शान्त। चार भाव मने गए हैं –स्थाई भाव, विभाव अनुभाव और संचारी भाव । गायन के प्रकार भी— ध्रुपद गायन, ख्याल, ठुमरी, टप्पा आदि हैं। हमारे संगीत शास्त्रकारों ने सप्त स्वरों से उत्पन्न रस इस प्रकार बताए हैं :- सा,रे – वीर, 'रौद्र' ,अद्भुत । ग ,नि – करुण , म,प- हास्य एवं श्रृंगार , ध – वीभत्स एवं भयानक । हम सब जानते हैं की संगीत में शब्द का अर्थ का बोध हुए बिना भाव या रस की प्रतीति हो जाती है ।संगीत के सभी शुद्ध और विकृत स्वर रस निष्पति करने में सहायक है । संगीत का उद्देश्य वास्तव में श्रोताओं को रस की अनुभूति करना है और रस की निष्पति तभी संभव है यदि राग को उसके समय के अनुसार प्रस्तुत किया जाए ।

मुख्य शब्द *:- समय, रस, अनुभूति, सिद्धांत,निष्पति,अनुभव ।*

भूमिका

मानव के जीवन पटल पर अपने देश- प्रदेश की प्रकृति ,इतिहास, संस्कृति और वातावरण का प्रभाव पड़ता है और उसी प्रभाव के अनुकूल उसका क्रिया-कलाप का विकास और निर्माण होता है। भारत की संस्कृति अन्य देशों से भिन्न होने के कारण इसका संगीत भी अन्य देशों से भिन्न है। भारतीय संगीत कला में हमारी रुचि का दृष्टिकोण भी अन्य देशों से भिन्न रहा है। प्रातःकाल, मध्यान्ह, सायंकाल और रात्रि आदि अलग-अलग समय तथा अलग-अलग ऋतुओं का मानव के मनःस्थिति पर विशेष प्रभाव पड़ता है। संगीतिक ध्वनि और प्रकृति से प्रेरित मानवीय मनोवृत्ति के सामंजस्य के आधार पर भारतीय संगीत में रागों के समय निर्धारित किए गए। समय-समय पर ऋतुओं के रूप बदलने से नए रागों की रचना हुई। भारतीय संगीत में रस सिद्धान्त एवं समय सिद्धान्त का बड़ा महत्व है। जहाँ समय सिद्धान्त उन रागों को विशेष ऋतुओं,दिन के पहरों या मोसमों को जोड़ता है वहीँ रस सिद्धान्त इन रागों के माध्यम से श्रोताओं के मन में विविध भावनाओं (जैसे आनन्द, शान्ति, करुणा) को जागृत करता है। जिससे भावनात्मक एवम अध्यात्मिक लक्ष्य की प्राप्ति करने में सहयोग मिलता है । संगीत रस निष्पति का सबसे प्रभावशाली माध्यम है ।

रस और सौन्दर्य एक ही बात है । लय में ताल का महत्व है, वहीं रस में भाव का। "रस भाव से उत्पन्न अनुभूतिपूर्ण वह तत्व है जो झरने की सतत प्रवाहित जल राशी के समान कला सुमेरु से फूटकर बहता है । इस भाव में जहाँ उद्रेक की अवस्थाएँ आती रहती हैं वहीँ सहृदय को सोंदर्य की अनभूति होती है ''[1] इस प्रकार रागों को समय पर गाने से उनका अनुकूल प्रभाव हमारे मस्तिष्क पर पड़ता है।

भारतीय संगीत में समय सिद्धान्त :- भारतीय संगीतकारों ने यह भी अनुभव किया कि संगीत का प्रभाव प्राकृतिक अवस्था (समय) से प्रभावित मनःस्थिति के अनुकूल हो तो वह संगीत अधिक प्रिय लगता है। ग्रीष्म ऋतु की भीषण तपती दोपहरी में बसंत राग गाने की कल्पना मन को कदापि एव स्वीकार नहीं हो सकती क्यों कि बसंत राग से प्रेरित मनोभाव ग्रीष्म ऋतु में उत्पन्न मनोभाव से भिन्न है। महाराणा कुम्भा कृत संगीतराज में दिन के अलग-अलग प्रहरों की तुलना ऋतुओं से की गई है । लू से तपती दुपहरी में अथवा माघ पोष की ठण्ड में मयूर नृत्य की कल्पना नहीं होती और न ही ठण्ड के दिनों में वर्षा की फुहारें अच्छी लगती। मल्हार के राग तो वर्षी में ही अच्छे लगते हैं। वसन्त एवं बहार रागों की बंदिशें होली एवं फागुन महीने में अच्छी लगती हैं। वेदकालीन संगीत में साम की उपासना ऋतुओं के अनुसार बताई गई है। भारतीय संगीत में समय सिद्धात पर विशेष ज़ोर दिया गया है। यहाँ तक की दिन और रात के विभिन्न प्रहरों के अनुसार रागों की रचना की गई है। भैरव, कालिंगडा, विभास राग सुबह और मारवा , पुरिया, पुरिया धनाश्री, पुरिया कल्याण राग शाम के समय गाये बजाये जाते हैं। इसी प्रकार बागेश्री, खमाज मालकोंस, दुर्गा

CONFLUENCE OF KNOWLEDGE
(A Multidisciplinary International Peer-Reviewed/Refereed Journal)
ISSN 2320–5237 | Volume 13, Issue 03, April 2026 (Special Issue)
http://cok.pratibha-spandan.org | © The Author(s) 2026

आदि राग रात के समय गाये जाते हैं। शारंगदेव ने अपने ग्रन्थ 'संगीत रत्नाकर' के प्रत्येक वर्ग के रागों का सम्बन्ध ऋतुओं से स्थापित किया है जैसे-गौड़ पंचम ग्रीष्म ऋतु में, भिन्न षड़ज हेमन्त ऋतु में, डिण्डोल वसन्त ऋतु में l ''आधुनिक हिंदुस्तान संगीत पद्धति में रागों का गायन समय दिन और रात के चोबीस घंटों के दो भाग करके बाँट दिया गया है l पहला भाग दिन के 12 बजे से रात्रि के 12 बजे तथा दूसरा भाग रात्रि के 12 बजे से लेकर दिन के 12 बजे तक स्वीकार करके उन्हें पूर्व और उत्तर राग के नाम से बांटा है l ''2 उपरोक्त समयानुसार जिन रगों के वादी स्वर सप्तक के उत्तरांग में होते हैं उन्हें दिन के उत्तर भाग में गाया जाता है तथा जिन रागों का वादी स्वर सप्तक के पूर्वांग में होता है वे राग दिन के पुर्व भाग में गाए बजाए जाते हैं l स्वर और समय की दृष्टि से हिन्दुस्तानी शास्त्रीय रागों को तीन वर्गों में मान कर कोमल और तीव्र के अनुसार उनका विभाजन किया गया है - (1) रे ध कोमल वाले राग ((संधि प्रकाश राग) (2) शुद्ध रे और शुद्ध ध वाले राग (3) ग और नि कोमल वाले राग l संधि प्रकाश राग सुबह और शाम की संधि बेला में गाये जाते हैं l सुबह वाले रागों में शुद्ध म और शाम वाले रागों में तीव्र म का प्रयोग किया जाता है l " जिन रागों में रे ध स्वर कोमल लगते हैं ,वे संधि प्रकाश राग कहलाते हैं , क्यों की इनका गायन उस समय होता है जब दिन और रात्रि (प्रकाश) की संधि होती है l दुसरे शब्दों में सूर्यादय –सूर्यास्त का समय संधि प्रकाश काल कहलाता है l अत: संधि प्रकाश का समय 4 बजे से 7 बजे तक प्रातः काल तथा 4 से 7 बजे तक सांयकाल माना जाता है l "3

संगीत में रस सिद्धान्त :

दैनिक व्यहवार में रस शब्द का प्रयोग अनेक अर्थों में किया जाता है l जब कोई गन्ने के रस या रसगुल्ले के रस की चर्चा करता है तो वह एक विशेष तरल प्रदार्थ की ओर संकेत करता है l वाणी का रस मधुरता का द्योतक है l कभी कभी यह रस नेत्रों की छलक प्रेम का स्वरूप धारण करता है तो कभी इस रस को गोरस कह कर उससे इन्द्रिय सुख का बोध कराया जाता है l व्याकरण के आधार पर रस की उत्पत्ति इस प्रकार से मानी गई है :- "सरसते इति रस:" अत: जो बहे वही रस है l " रस्यते इति रस :" अर्थात जो आस्वादित किया जाए वही रस है l नाटय शास्त्र में भारत मुनि ने लिखा है , " तत्र विभावानुभाव व्याभिचारी संयोगाद्रस निष्पति "अर्थात विविध भावों – विभाव ,अनुभाव तथा व्याभिचारी (संचारी) भाव से युक्त स्थाई भाव ही रस में परिणित होता है l भरत के नाट्यशास्त्र के टीकाकार नान्य भूपाल ,अभिनव गुप्त अदि ने भी रस की यही परिभाषा स्वीकार की है l मध्यकालीन युग में महाराणा कुम्भा कृत 'संगीतराज ' शारंगदेव की 'संगीतरत्नाकर ' आदि अनेक गन्थों में भी यही परिभाषा दी गई है l " मानव जाती में निवास करने वाली विशिष्ट भावनाओं के सतोगुण प्रधान परमोत्कर्ष को ही शास्त्रकारों ने रस कहा है ,अथवा जब कोई स्वाभाविक वस्तु कुछ परिवर्तित होकर मन के अंदर एक असाधारण नवीनता उत्पन्न कर देती है ,तब उसे रस कहते है l ''4 साहित्य में नो रस मने गए हैं – श्रृंगार , हास्य , करूँण , रौद्र , वीर , भयानक ,वीभत्स , अद्भुत और शांत l महर्षियो के अनुसार मुख्य रस चार है –श्रृंगार , रौद्र, वीर एवं वीभत्स l इन्ही से क्रमश: हास्य ,करुण , अद्भुत एवं भयानक रसों की उत्पत्ति होती है l किसी भी कला के लिए यह जरुरी है की उससे मानव हृदय में स्थित स्थाई भाव जागें और उन भावों से तत्संबंधी रस की उत्पत्ति होती हो ,तभी मनुष्य आनंद की अनुभूति कर सकता है और इसी को सोंदर्य बोध कहते है l संगीत में भाव का सर्वप्रथम विवेचन भरत ने अपनी पुस्तक नाट्यशास्त्र में सप्तम अध्याय में किया है – भावा इति कस्मात, किम भवन्तीति भाव : कीं वा भावयंतिती भाव: l अर्थात भाव की व्युत्पति किस प्रकार की जाए ,जो होते हैं भाव है अथवा जो भावित करते हैं ,वे भाव हैं l भाव के कई प्रकार माने गए हैं l विभाव के कारण भाव माना गया है तथा अनुभाव को परिणाम भाव , व्याभिचारी अथवा संचारी भाव अस्थाई भाव मने जाते हैं l " स्थाई भाव नो है – रति ,हास ,शोक ,क्रोध , उत्साह ,भय जुकुप्सा ,विस्मय और निर्वेद l ''5 भरत मुनि ने निर्वेद को स्थाई भाव और शांत को रस नहीं माना l बाद में एनी विद्वानों द्वारा निर्वेद को अस्थाई भाव और शांत को नवा रस मान लिया गया l आन्तरिक भावना के बाह्य चिन्ह आठ मने गए। इन्हें सात्विक भाव कहा गया जो इस प्रकार से है – स्तम्भ , स्वेद , रोमांच , स्वर भेद, विपथ , वेवर्न्य, अश्रु और प्रलय l अंगीरस के विषय में कहा गया है कि अनेक रसों का समावेष होते हुए किसी एक रस को अवश्य ही विशेष अंगी रस बनाता है। अनेक रसों में जो एक बहुल एवं प्रधान रूप से विद्यमान रहता है। वह स्थाई या अंगी रस होता है। काव्य शास्त्र में भी यही रस मान्य है।

सैद्धान्तिक नज़रिए से रस शब्द का प्रयोग अनेक अर्थों में किया जाता है। जब कोई व्यक्ति रस या रसयुक्त वस्तु का स्वाद करता है तो वह एक विशेष प्रकार की आनन्द अनुभूति करता है। वाणी का रस मधुरता का द्योतक है। कभी-कभी यह रस वस्तु के स्वभाव का वर्णन करता है तो कभी इस रस को गम्भीर बनाकर उससे इन्द्रियों सुख का बोध कराया जाता है। आचार्यों के अनुसार रस की उत्पत्ति के सम्बन्ध में कहा गया है— "रसत्व इति रसः।" अर्थात जो आस्वादित किया जाए वही रस है। नाट्य शास्त्र में भरतमुनि ने लिखा है—

CONFLUENCE OF KNOWLEDGE
(A Multidisciplinary International Peer-Reviewed/Refereed Journal)
ISSN 2320–5237 | Volume 13, Issue 03, April 2026 (Special Issue)
http://cok.pratibha-spandan.org | © The Author(s) 2026

"विभावानुभाव व्यभिचारी संयोगाद् रस निष्पत्तिः।"

अर्थात विभाव, अनुभाव तथा संचारी भावों के संयोग से स्थायी भाव ही रस में परिवर्तित हो जाता है।

भरत नाट्य शास्त्र के टीकाकार अभिनवगुप्त आदि ने भी रस की यही परिभाषा स्वीकार की है। मध्यकालीन युग में महाकवि भट्ट लोल्लट, शंकुक आदि के सिद्धान्तों में भी रस की विस्तृत व्याख्या की गई है। प्राण वायु में निवास करने वाली विभिन्न भावनाओं के संयोग से उत्पन्न परस्पर क्रिया को ही आचार्यों ने रस कहा है। जब कोई स्वाभाविक वस्तु या घटना परिवर्तित होकर मन के अन्दर नवीन भावनाओं का निर्माण करती है, तब उसे 'रस' कहते हैं।

साहित्य में नौ रस माने गए हैं— श्रृंगार, हास्य, करुण, रौद्र, वीर, भयानक, वीभत्स, अद्भुत और शान्त।

नृत्य और नाटक में :—

नृत्य और नाटक में आँखों ,मुखाभिव्यक्ति , हस्तमुद्राएँ और शरीर के संचालन से या अभिनेताओं के शब्दों से रस की निष्पत्ति होती है। गायक को गीत पाठ के द्वारा रस को निष्पन्न करने की क्षमता होती है। वादक वाद्य को बजाकर अपने श्रोताओं के मन में रस का संचार करते हैं l रस सिद्धान्त भारतीय कला की सर्वाधिक महत्वपूर्ण अवधारणाओं में से एक है। नाट्यशास्त्र का ग्रंथ 'पाँचवाँ वेद' कहा जाता है और इसमें विभिन्न अवस्थाओं और फल निष्पत्ति का अध्ययन किया गया है। इस प्रकार रस का सिद्धान्त भावनात्मक अनुभवों, मानसिक अवस्थाओं और गुणों से पूरी तरह से संबंधित है।

संगीत रस निष्पत्ति कैसे करता है, संगीत रत्नाकर में इस पर विचार किया गया तथा 96 प्रकार गिनाए गए जिनसे रस निष्पति संभव है l इनके चार प्रकार प्रमुख हैं – उच्चतर ,लय, ताल तथा विश्रांति l इनके कई प्रकार उल्लेखित हैं— उत्साह, लय, ताल तथा विभिन्न विशेषताएँ। रस का मूल तत्व स्वाभाविकता के परिप्रेक्ष्य या परिवेश से जुड़ा होता है। संसार में कोई भी चेतनात्मक गति या घटना नहीं है जिसमें रस का पूर्णतया निहित न होता हो। संगीत के सभी शुद्ध एवं विकृत स्वर रस निष्पति करने में सहायक है l इसी प्रकार बिलावल , केदार एवं कल्याण अंग द्वारा शांत एवं श्रृंगार रस, दरबारी कान्हड़ा में कोमल गंधार वात्सल्य रस , हिंडोल ,शंकरा ,मालकोंस ,सारंग आदि रागों के स्वरों से हृदय में वीरता ,उत्साह का संचार होता है l बहार ,बागेश्री आदि रागों से हृदय में अनुराग उत्पन्न होता है तथा श्रृंगार रस उत्पन्न करते हैं l जोगिया, तोड़ी ,मारवा ,पूर्वी राग शोक एवं करुण रस प्रदान करते हैं l प्रत्येक कला की अभिव्यक्ति के विभिन्न माध्यम होते हैं, जैसे— चित्रकला का माध्यम आकृति और रंग तथा काव्य का माध्यम शब्द और ध्वनि है। इसी प्रकार संगीत की अभिव्यक्ति का माध्यम ध्वनि है। वाद्य संगीत का मुख्य आधार नाद है और उसका माध्यम केवल ध्वनि है। परन्तु संगीत जैसे— ध्रुपद, ख्याल, ठुमरी आदि का माध्यम शब्द, ध्वनि और लय होता है, किन्तु प्रमुखता ध्वनि की ही होती है।

"सब जानते हैं की संगीत में शब्द के अर्थ का बोध हुए बिना भाव या रस की प्रतीति हो जाती है l यहाँ तक की शब्द हो या ना हो ,केवल नाद के बल से संगीत में रस निष्पति हो जाती है l इसी से यह मानना पड़ता है की नाद में कोई एसी शक्ति सन्निहित है जो की शब्द की वाचक शक्ति की सहायता के बिना ही अर्थ ,भाव या रस की प्रतीति करा देती है l इस शक्ति की वैज्ञानिक विवेचना के (गन्धर्व वेद) तो अब लुप्तप्राय है परन्तु ध्वन्यालोक के कुछ स्थलों में नाद की इस शक्ति की मेहता का प्रबल संकेत उपलब्ध है l ''6

इस वाक्य की वैज्ञानिक विवेचना के अनुसार ध्वनि (साउंड वेव्स) एक स्पंदन है। ध्वनि तरंगों के कुछ विशेष गुणों के कारण वे हमारे मस्तिष्क को प्रभावित करने में सक्षम होती हैं। गायक स्वामी हरिदास द्वारा किए गए प्रयोगों से यह सिद्ध हुआ कि विशेष प्रकार की ध्वनियाँ मनुष्य के मानसिक एवं भावनात्मक संतुलन पर प्रभाव डालती हैं। इस प्रकार संगीत विभिन्न भावनाओं को जागृत करके उन्हें नियंत्रित करने में सहायक होता है, जिसे रस कहते हैं। महाकवि कालिदास ने कहा है कि रस दृष्टि के द्वारा और मधुर शब्दों के द्वारा प्राणी मात्र के मन में जाग्रत एवं स्थित भावनाएँ उत्पन्न करता है। अंगीरस के विषय में कहा गया है कि अनेक रसों का समावेष होते हुए किसी एक रस को अवश्य ही विशेष अंगी रस बनाता है। अनेक रसों में जो एक बहुल एवं प्रधान रूप से विद्यमान रहता है। वह स्थाई या अंगी रस होता है। काव्य शास्त्र में भी यही रस मान्य है।

हमारे प्राचीन शास्त्रकारों ने सप्त स्वरों के रस इस प्रकार बताए हैं-

सारे – वीर, रौद्र, अद्भूत रसों का पोषक है।

CONFLUENCE OF KNOWLEDGE
(A Multidisciplinary International Peer-Reviewed/Refereed Journal)
ISSN 2320–5237 | Volume 13, Issue 03, April 2026 (Special Issue)
http://cok.pratibha-spandan.org | © The Author(s) 2026

ध - वीभत्स तया भयानक रसों का पोषक है।

ग, नि - करुण रस का पोषक है।

म,प - हास्य और श्रृंगार रसों का पोषक है।

भरत कृत नाटयशास्त्र में अलग-अलग स्वरों के रस दिए गए हैं. और विभिन्न रसों की निष्पति के लिए विभिन्न जातियों के प्रयोग भी बतलाए गए हैं। बाद में जातियों से रागों का निर्माण हुआ और राग में रस अंतर्निहित माना गया है। श्रुतियों का वास स्वर में माना गया है। श्रुतियां कुल 22 मानी गई है। इन श्रुतियों को पाँच जातियों में विभक्त किया गया है – (1) दीप्ता (2) आयता (3) मध्या (4) मृदु और (5) करुणा। पं० महोबल ने संगीत पारिजात में लिखा है- वीर, अदभूत और रौद्र इन तीन रसों की जाति 'दीप्ता' तथा श्रृंगार रस की 'मृदु' और हास्य रस की जाति आयता, करुण रस की करुणा और विभत्स भयानक और हास्य की (मध्या नामक जातियां होती है। इस प्रकार श्रुति की जो जाति और उस जाति का जो रस हो, वाही रस श्रुतिस्थ स्वर का होगा। उस स्वर के द्वारा जिस राग के अंश ग्रह और न्यास बनेंगे, वही रस उस राग का भी रस होगा। दो रागों की स्वरावली एक होने पर भी उनके प्रयोग करने की प्रणाली में अन्तर होने से दोनों के स्वरूप भिन्न होकर अलग-2 रस का आभास देते ह

भरत कृत नाव्यशास्त्र में अलग-अलग स्वरों के रस दिए गए हैं. और विभिन्न रसों की निष्पति के लिए विभिन्न जातियों के प्रयोग भी बतलाए गए हैं। बाद में जातियों से राग का निर्माण हुआ और राग में रस अंतर्निहित माना गया है। श्रुतियों का वास स्वर में माना गया है। श्रुतियां कुल 22 मानी गई है। इन श्रुतियों को पाँच जातियों में विभक्त किया गया है - दीप्ता (2) आयता (3) मध्या (4) मृदु और (5) करुणा। पं० महोबल ने संगीत पारिजात में लिखा है- वीर, अदभूत और रौद्र इन तीन रसों की जाति 'दीप्ता' तथा श्रृंगार रस की 'मृदु' और हास्य रस की जाति आयता, करुण रस की करुणा और विभत्स भयानक और हास्य की मध्या नामक जातियां होती है। इस प्रकार श्रुति की जो जाति और उस जाति का जो रस हो, वही रस श्रुतिस्थ स्वर का होगा। उस स्वर के द्वारा जिस राग के अंश ग्रह और न्यास बनेंगे, वही रस उस राग का भी रस होगा। दो रागों की स्वरावली एक होने पर भी उनके प्रयोग करने की प्रणाली में अन्तर होने से दोनों के स्वरूप भिन्न होकर अलग-2 रस का आभास देते हैं।

निष्कर्ष

भारतीय संगीत में समय सिद्धांत एवं रस सिद्धांत दोनों का महत्वपूर्ण स्थान है l जहाँ शास्त्रीय रागों का गायन ,वादन निर्धारित किया गया है वहां रागों के स्वरों से अलग अलग रसों की निष्पति होती है जिनका सीधा प्रभाव हमारे मस्तिष्क पर पड़ता है l समय सिद्धांत के अनुसार हर राग को गाने बजाने का एक निश्चित समय निर्धारित किया गया है l मान्यता यह भी है की यदि राग को सही समय पर गाया जाए तो यह मानव मन पर अमिट छाप छोड़ता है l सही समय पर राग सुनने से भावनात्मक प्रभाव गहरा होता है और मन प्रसन्न और आनंदित होता है l वहीँ रस सिद्धांत का सम्बन्ध संगीत से उत्पन्न भावनात्मक अनुभूति से है l संगीत का उद्देश्य वास्तव में श्रोताओं को रस की अनुभूति कराना है और रस की निष्पत्ति तभी संभव है जब राग को उसके समय के अनुसार प्रस्तुत किया जाए l समय सिद्धांत सही वातावरण देता है तथा रस सिद्धांत सही भाव जगाता है l दोनों मिलकर संगीत को पूर्णता प्रदान करते हैं l इसी कारण भारतीय संगीत को आत्मा का संगीत भी कहा गया है l

सन्दर्भ

(1) संगीत विशारद, डॉ. लक्ष्मी नारायण गर्ग पृ० 594
(2) संगीत विशारद, डॉ. लक्ष्मी नारायण गर्ग पृ० 547
(3.) राग परिचय, हरिश्चन्द्र श्रीवास्तव पृ० 159
(4) संगीत विशारद, डॉ. लक्ष्मी नारायण गर्ग पृ०548
(5.) संगीत अंक मार्च 1981, डॉ. लक्ष्मी नारायण गर्ग पृ०9
(6) संगीत निबंध माला, एम विजय लक्ष्मी पृ०109